॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

अमृतनाद उपनिषद

विषय सूची

॥अथ अमृतनादोपनिषत् ॥ 3
शान्तिपाठ 18

॥ श्री हरि ॥

॥अथ अमृतनादोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अमृतनादोपनिषत्प्रतिपाद्यं पराक्षरम् ।
त्रैपदानन्दसाम्राज्यं हृदि मे भातु सन्ततम् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥अथ अमृतनादोपनिषत् ॥

॥ अमृतनाद उपनिषद् ॥

शास्त्राण्यधीत्य मेधावी अभ्यस्य च पुनः पुनः ।
परमं ब्रह्म विज्ञाय उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत् ॥ १॥

परम ज्ञानवान् मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह शास्त्रादि का अध्ययन करके बारम्बार उनका अभ्यास करते हुए ब्रह्म विद्या की प्राप्ति करे। विद्युत् की कान्ति के समान क्षण-भंगुर इस जीवन को (आलस्य-प्रमाद में) नष्ट न करे ॥ १ ॥

ओङ्कारं रथमारुह्य विष्णुं कृत्वाथ सारथिम् ।
ब्रह्मलोकपदान्वेषी रुद्राराधनतत्परः ॥ २॥

ॐकार रूपी रथ में आरूढ़ होकर तथा भगवान् विष्णु को अपना सारथि बनाकर ब्रह्मलोक के परमपद का चिन्तन करता हुआ ज्ञानी पुरुष देवाधिदेव भगवान् रुद्र की उपासना में तल्लीन रहे ॥२॥

तावद्रथेन गन्तव्यं यावद्रथपथि स्थितः ।
स्थित्वा रथपथस्थानं रथमुत्सृज्य गच्छति ॥ ३॥

उस (प्रणवरूपी) रथ के द्वारा तब तक चलना चाहिए, जब तक कि रथ द्वारा चलने योग्य मार्ग पूर्ण न हो जाये। जब वह

मार्ग (लक्ष्य) पूर्ण हो जाता है, तब उस रथ को छोड़ कर मनुष्य स्वतः ही प्रस्थान कर जाता है ॥ ३ ॥

मात्रालिङ्गपदं त्यक्त्वा शब्दव्यञ्जनवर्जितम् ।
अस्वरेण मकारेण पदं सूक्ष्मं च गच्छति ॥ ४॥

प्रणव की अकारादि जो मात्राएँ हैं तथा उन (मात्राओं) में जो लिङ्गभूत पद हैं, उन सभी के आश्रयभूत संसार का चिन्तन करते हुए उसका त्याग कर, स्वरहीन 'मकार' वाची ईश्वर का ध्यान करने से साधक की क्रमशः उस सूक्ष्म पद में प्रविष्टि हो जाती है। वह परम तत्त्व सभी प्रपंचों से पूर्णतया दूर है ॥४ ॥

शब्दादिविषयाः पञ्च मनश्चैवातिचञ्चलम् ।
चिन्तयेदात्मनो रश्मीन्प्रत्याहारः स उच्यते ॥५॥

शब्द, स्पर्श आदि पाँचों विषय तथा इनको ग्रहण करने वाली समस्त इन्द्रियाँ एवं अति चंचल मन- इनको सूर्य के सदृश अपनी आत्मा की रश्मियों के रूप में देखें अर्थात् आत्मा के प्रकाश से ही मन की सत्ता है और उसी प्रकाश स्वरूप आत्मा को बाह्य सत्ता से शब्द आदि विषय भी सत्तावान् हैं। इस प्रकार से आत्म-चिन्तन को ही प्रत्याहार कहते हैं ॥५॥

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा ।
तर्कश्चैव समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते ॥ ६॥

प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क तथा समाधि इन छः अंगों से युक्त साधना को योग कहा गया है ॥ ६ ॥

यथा पर्वतधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥ ७॥

जिस प्रकार पर्वतों में उत्पन्न स्वर्ण आदि धातुओं का मैल अग्नि में तपाने से भस्म हो जाता है। उसी प्रकार समस्त इन्द्रियों के द्वारा किये गये दोष प्राणायाम की प्रक्रिया द्वारा भस्म हो जाते हैं ॥ ७ ॥

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गाद्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ८॥

किल्बिषं हि क्षयं नीत्वा रुचिरं चैव चिन्तयेत् ॥ ९॥

प्राणायाम के माध्यम से दोषों को तथा धारणा के माध्यम से पापों को जलाकर भस्म कर डालें। प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रिय के संसर्ग से उत्पन्न दोष तथा ध्यान के द्वारा अनीश्वरीय गुणों का नाश होता है। इस प्रकार संचित पापों एवं उन इन्द्रियों

के कुसंस्कारों का शमन करते हुए अपने इष्ट के मनोहारी रूप का चिन्तन करना चाहिए ॥ ८-९ ॥

रुचिरं रेचकं चैव वायोराकर्षणं तथा ।
प्राणायामस्त्रयः प्रोक्ता रेचपूरककुम्भकाः ॥ १०॥

इस प्रकार अपने इष्ट के सुन्दर रूप का ध्यान करते हुए वायु को अन्त:करण में स्थिर रखना, श्वास को निःसृत करना और वायु को अन्दर खींचना । इस प्रकार रेचक, पूरक एवं अन्त:-बाह्य कुम्भक के रूप में तीन तरह के प्राणायाम कहे गये हैं ॥ १०

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ११॥

प्राण शक्ति की वृद्धि करने वाला साधक व्याहृतियों एवं प्रणव सहित सम्पूर्ण गायत्री का उसके शीर्ष भाग सहित तीन बार मानस-पाठ करते हुए पूरक, कुम्भक तथा रेचक करे। इस प्रकार की प्रक्रिया को एक 'प्राणायाम' कहा गया है ॥११॥

उत्क्षिप्य वायुमाकाशं शून्यं कृत्वा निरात्मकम् ।
शून्यभावेन युञ्जीयाद्रेचकस्येति लक्षणम् ॥ १२॥

(नासिका द्वारा) प्राणवायु को आकाश में निकालकर हृदय को वायु से रहित एवं चिन्तन से रिक्त करते हुए शून्यभाव में मन को स्थिर करने की प्रक्रिया ही 'रेचक' है। यही 'रेचक प्राणायाम' का लक्षण है ॥ १२ ॥

वक्त्रेणोत्पलनालेन तोयमाकर्षयेन्नरः ।
एवं वायुर्ग्रहीतव्यः पूरकस्येति लक्षणम् ॥ १३॥

जिस प्रकार पुरुष मुख के माध्यम से कमल-नाल द्वारा शनैः-शनैः जल को ग्रहण करता है, उसी प्रकार मन्द गति से प्राण वायु को अपने अन्त:करण में धारण करना चाहिए। यही प्राणायाम के अन्तर्गत 'पूरक' का लक्षण हैं ॥ १३ ॥

नोच्छ्वसेन्न च निश्वासेत् गात्राणि नैव चालयेत् ।
एवं भावं नियुञ्जीयात् कुम्भकस्येति लक्षणम् ॥ १४॥

श्वास को न तो अन्त:करण में आकृष्ट करे और न ही बहिर्गमन करे तथा शरीर में कोई हलचल भी न करे। इस तरह से प्राण वायु को रोकने की प्रक्रिया को 'कुम्भक' प्राणायाम का लक्षण कहा गया है ॥ १४ ॥

अन्धवत्पश्य रूपाणि शब्दं बधिरवत् शृणु ।
काष्ठवत्पश्य ते देहं प्रशान्तस्येति लक्षणम् ॥ १५॥

जिस भाँति अन्धे को कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी भाँति साधक नाम रूपात्मक अन्य कुछ भी न देखे । शब्द को बधिर की भाँति श्रवण करे और शरीर को काष्ठ की तरह जाने । यही प्रशान्त का लक्षण है ॥ १५ ॥

मनः सङ्कल्पकं ध्यात्वा संक्षिप्यात्मनि बुद्धिमान् ।
धारयित्वा तथाऽऽत्मानं धारणा परिकीर्तिता ॥ १६॥

बुद्धिमान् मनुष्य मन को संकल्प के रूप में जानकर, उसे आत्मा (बुद्धि) में लय कर दे। तत्पश्चात् उस आत्मारूपी सद्बुद्धि को भी परमात्म सत्ता के ध्यान में स्थिर कर दे। इस तरह की क्रिया को ही धारणा की स्थिति के रूप में जाना जाता है ॥ १६ ॥

आगमस्याविरोधेन ऊहनं तर्क उच्यते ।
समं मन्येत यं लब्ध्वा स समाधिः प्रकीर्तितः ॥ १७॥

ऊहा' अर्थात् विचार करना 'तर्क' कहा जाता है। ऐसे 'तर्क' को प्राप्त करके दूसरे अन्य सभी प्राप्त होने वाले पदार्थों को तुच्छ (निकृष्ट) मान लिया जाता है। इस प्रकार की स्थिति को ही 'समाधि' की अवस्था कहा जाता है ॥ १७ ॥

भूमिभागे समे रम्ये सर्वदोषविवर्जिते ।

कृत्वा मनोमयीं रक्षां जप्त्वा चैवाथ मण्डले ॥ १८॥

भूमि को स्वच्छ, समतल करके रमणीय तथा सभी दोषों से रहित क्षेत्र में मानसिक रक्षा करता हुआ रथमण्डल (ॐकार) का जप करे॥ १८ ॥

पद्मकं स्वस्तिकं वापि भद्रासनमथापि वा ।
बद्ध्वा योगासनं सम्यगुत्तराभिमुखः स्थितः ॥ १९॥

पद्मासन, स्वस्तिकासन और भद्रासन में से किसी एक योगासन में आसीन होकर उत्तराभिमुख हो करके बैठना चाहिए ॥ १९ ॥

नासिकापुटमङ्गुल्या पिधायैकेन मारुतम् ।
आकृष्य धारयेदग्निं शब्दमेवाभिचिन्तयेत् ॥ २०॥

तत्पश्चात् नासिका के एक छिद्र को एक अँगुली से बन्द करके , दूसरे खुले छिद्र से वायु को खींचे। फिर दोनों नासापुटों को बन्द करके उस प्राण वायु को धारण करे। उस समय तेज:स्वरूप शब्द (ओंकार) का ही चिन्तन करे ॥ २०॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येकेन रेचयेत् ।
दिव्यमन्त्रेण बहुशः कुर्यादात्ममलच्युतिम् ॥ २१॥

वह शब्द रूप एकाक्षर प्रणव (ॐ) ही ब्रह्म है। तदनन्तर इसी एकाक्षर ब्रह्म ॐकार का ही ध्यान करता हुआ रेचक क्रिया सम्पन्न करे अर्थात् वायु का शनैः-शनैः निष्कासन करे। इस तरह से कई बार इस 'ओंकार' रूपी दिव्य मन्त्र से (प्राणायाम की क्रिया द्वारा) अपने चित्त के मल को दूर करना चाहिए ॥ २१ ॥

पश्चाद्ध्यायीत पूर्वोक्तक्रमशो मन्त्रविद्बुधः ।
स्थूलातिस्थूलमात्रायं नाभेरूर्ध्वरुपक्रमः ॥ २२॥

इस प्रकार प्राणायाम के द्वारा सभी दोषों का शमन करते हुए पूर्व निर्दिष्ट क्रम | के अनुसार 'ओंकार' का ध्यान करते हुए प्राणायाम करे। इस तरह का 'प्रणव गर्भ' प्राणायाम नाभि के ऊर्ध्व भाग अर्थात् हृदय में ध्यान करते हुए स्थूलातिस्थूल मात्रा में सम्पन्न करे ॥ २२ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधो दृष्टिं विहाय च महामतिः ।
स्थिरस्थायी विनिष्कम्पः सदा योगं समभ्यसेत् ॥ २३॥

अपनी दृष्टि को ऊपर अथवा नीचे की ओर तिरछा घुमाकर केन्द्रित करते हुए बुद्धिमान् साधक स्थिरता पूर्वक निष्कम्प भाव से स्थित होकर योग का अभ्यास करे ॥ २३ ॥

तालमात्राविनिष्कम्पो धारणायोजनं तथा ।
द्वादशमात्रो योगस्तु कालतो नियमः स्मृतः ॥ २४॥

योगाभ्यास की यह क्रिया तालवृक्ष की भाँति कुछ ही काल में फल प्रदान करने वाली है। इसका अभ्यास पहले से सुनिश्चित योजनानुसार ही करने योग्य है अर्थात् बीच में उसे घटाना, बढ़ाना या रोकना नहीं चाहिए। द्वादश मात्राओं की आवृत्ति भी समान समय में ही पूर्ण करनी चाहिए ॥ २४

अघोषमव्यञ्जनमस्वरं च अकण्ठताल्वोष्ठमनासिकं च ।
अरेफजातमुभयोष्मवर्जितं यदक्षरं न क्षरते कदाचित्॥२५॥

इस प्रणव नाम से प्रसिद्ध घोष का उच्चारण बाह्य प्रयत्नों से नहीं होता है। यह व्यञ्जन एवं स्वर भी नहीं है। इसका उच्चारण कण्ठ, तालु, ओष्ठ एवं नासिका आदि से भी नहीं होता। इसका दोनों ओष्ठों के अन्त: में स्थित दन्त नामक क्षेत्र से भी उच्चारण नहीं होता। 'प्रणव' वह श्रेष्ठ अक्षर है, जो कभी भी च्युत नहीं होता। ओंकार का प्राणायाम के रूप में अभ्यास करना चाहिए तथा मन गुञ्जायमान घोष में सदैव लगाए रहना चाहिए ॥ २५ ॥

येनासौ पश्यते मार्गं प्राणस्तेन हि गच्छति ।
अतस्तमभ्यसेन्नित्यं सन्मार्गगमनाय वै ॥ २६॥

योगी पुरुष जिस मार्ग का अवलोकन करता है अर्थात् मन के माध्यम से जिस स्थान को प्रवेश करने योग्य मानता है, उसी मार्ग से प्राण और मन के साथ गमन कर जाता है। प्राण श्रेष्ठ मार्ग से गमन करे, इस हेतु साधक को नित्य-नियमित अभ्यास करते रहना चाहिए ॥ २६ ॥

हृद्द्वारं वायुद्वारं च मूर्धद्वारमतः परम् ।
मोक्षद्वारं बिलं चैव सुषिरं मण्डलं विदुः ॥ २७॥

वायु के प्रवेश का मार्ग हृदय ही है। इससे ही प्राण सुषुम्णा के मार्ग में प्रवेश करता है। इससे ऊपर ऊर्ध्वगमन करने पर सबसे ऊपर मोक्ष का द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। योगी लोग इसे सूर्यमण्डल के रूप में जानते हैं। | इसी सूर्यमण्डल अथवा ब्रह्मरन्ध्र का बेधन करके प्राण का परित्याग करने से मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २७॥

भयं क्रोधमथालस्यमतिस्वप्नातिजागरम् ।
अत्याहरमनाहरं नित्यं योगी विवर्जयेत् ॥ २८॥

भय, क्रोध, आलस्य, अधिक शयन, अत्यधिक जागरण करना, अधिक भोजन करना या फिर बिल्कुल निराहार रहना आदि समस्त दुर्गुणों को योगी सदैव के लिए परित्याग कर दे ॥ २८ ॥

अनेन विधिना सम्यङ्नित्यमभ्यसतः क्रमात् ।
स्वयमुत्पद्यते ज्ञानं त्रिभिर्मासैर्न संशयः ॥ २९॥

इस प्रकार नियम पूर्वक जो भी साधक क्रमशः उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ नियमित अभ्यास करता है, उसे तीन मास में ही स्वयमेव ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ २९ ॥

चतुर्भिः पश्यते देवान्पञ्चभिस्तुल्यविक्रमः ।
इच्छयाप्नोति कैवल्यं षष्ठे मासि न संशयः ॥ ३०॥

वह योगी-साधक नित्य-नियमित अभ्यास करता हुआ चार मास में ही देव दर्शन की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। पाँच माह में देव-गणों के समान शक्ति-सामर्थ्य से युक्त हो जाता है तथा छः मास में अपनी इच्छानुसार निःसन्देह कैवल्य को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है ॥ ३० ॥

पार्थिवः पञ्चमात्रस्तु चतुर्मात्राणि वारुणः ।
आग्नेयस्तु त्रिमात्रोऽसौ वायव्यस्तु द्विमात्रकः ॥ ३१॥

पृथिवी तत्त्व की धारणा के समय में ओंकार रूप प्रणव की पाँच मात्राओं का, वरुण अर्थात् जल तत्त्व की धारणा के समय में चार मात्राओं का, अग्नि तत्त्व की धारणा के समय में

तीन मात्राओं का तथा वायु तत्त्व की धारणा के समय में दो मात्राओं के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए ॥ ३१ ॥

एकमात्रस्तथाकाशो ह्यर्धमात्रं तु चिन्तयेत् ।
सिद्धिं कृत्वा तु मनसा चिन्तयेदात्मनात्मनि ॥ ३२॥

आकाश तत्त्व की धारणा करते समय प्रणव की एक मात्रा का तथा स्वयं ओंकार रूप प्रणव की धारणा करते समय उसकी अर्द्धमात्रा का चिन्तन करे। अपने शरीर में ही मानसिक धारणा के माध्यम से पंचभूतों की सिद्धि प्राप्त करे और उनका ध्यान करे। इस तरह के कृत्य से प्रणव की धारणा द्वारा पञ्चभूतों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है ॥ ३२

त्रिंशत्पर्वाङ्गुलः प्राणो यत्र प्राणः प्रतिष्ठितः ।
एष प्राण इति ख्यातो बाह्यप्राणस्य गोचरः ॥ ३३॥

साढ़े तीस अङ्गुल लम्बा प्राण श्वास के रूप में जिसमें प्रतिष्ठित है, वही इस प्राण वायु का वास्तविक आश्रय है। यही कारण है कि इसे प्राण के रूप में जाना जाता है। जो बाह्य प्राण है, उसे इन्द्रियों के द्वारा देखा जाता है ॥ ३३ ॥

अशीतिश्च शतं चैव सहस्राणि त्रयोदश ।
लक्षश्चैकोननिःश्वास अहोरात्रप्रमाणतः ॥ ३४॥

इस बाह्य प्राण में एक लाख तेरह सहस्र छः सौ अस्सी निःश्वासों (श्वास-प्रश्वास) का आवागमन एक दिन एवं रात्रि में होता है ॥ ३४ ॥

प्राण आद्यो हृदिस्थाने अपानस्तु पुनर्गुदे ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः ॥ ३५॥

आदि प्राण का निवास हृदय क्षेत्र में, अपान का निवास गुदा स्थान में, समान का नाभि प्रदेश में एवं उदान का निवास कण्ठ प्रदेश में है ॥ ३५ ॥

व्यानः सर्वेषु चाङ्गेषु सदा व्यावृत्य तिष्ठति ।
अथ वर्णास्तु पञ्चानां प्राणादीनामनुक्रमात् ॥ ३६॥

व्यान समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों में व्यापक होकर सदैव प्रतिष्ठित रहता है। अब इसके पश्चात् समस्त प्राण आदि पाँचों वायुओं के रंग का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है ॥ ३६॥

रक्तवर्नो मणिप्रख्यः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः ।
अपानस्तस्य मध्ये तु इन्द्रगोपसमप्रभः ॥ ३७॥

इस प्राण वायु को लाल रंग की मणि के सदृश लोहित वर्ण की संज्ञा प्रदान की गई है। अपान वायु को गुदा के बीचो-

बीच इन्द्रगोप-बीर बहूटी नामक गहरे लाल (रंग वाले एक बरसाती कीड़े के) रंग का माना गया है ॥ ३७ ॥

समानस्तु द्वयोर्मध्ये गोक्षीरधवलप्रभः ।
आपाण्डर उदानश्च व्यानो ह्यर्चिस्समप्रभः ॥ ३८॥

नाभि के मध्य क्षेत्र में समान वायु स्थिर है। यह गो-दुग्ध या स्फटिक मणि की भाँति शुभ्र कान्तियुक्त है। उदान वायु का रंग धूसर अर्थात् मटमैला है और व्यान वायु का रंग अग्निशिखा की भाँति तेजस्वी है॥ ३८ ॥

यस्येदं मण्डलं भित्वा मारुतो याति मूर्धनि ।
यत्र तत्र म्रियेद्वापि न स भूयोऽबिजायते ।
न स भूयोऽभिजायत इत्युपनिषत् ॥ ३९॥

जिस श्रेष्ठ योगी अथवा साधक का प्राण इस मण्डल (पञ्चतत्त्वात्मक शरीर-क्षेत्र, वायु स्थान एवं हृदय प्रदेश) का बेधन कर मस्तिष्क के क्षेत्र में प्रविष्ट कर जाता है, वह अपने शरीर का जहाँ कहीं भी परित्याग करे, पुनः जन्म नहीं लेता अर्थात् जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है, यही उपनिषद् है ॥ ३९ ॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

॥ हरिः ॐ ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति कृष्णयजुर्वेदीय अमृतनादोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय अमृतनाद उपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥